१०

ज्ञान और विज्ञान

लेखक :—
पू० श्री मनोहर जी वर्णी
सहजानंद महाराज

प्रकाशक:—खेमचंद जैन, मंत्री श्री सहजानंद शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ

प्रति १०००
सन् १९८०

मूल्य : ७५ पैसे

ज्ञान और विज्ञान

प्रवक्ता—
अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री
पू० श्री मनोहर जी वर्णी
सहजानन्द महाराज

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

ज्ञान और विज्ञान—बन्धुओ ! आजकल जैसे धन संचय लिये लोग होड़ लगा रहे हैं, वैसे ही कुछ अनेक लोग विनविकासमें भी होड़ लगा रहे हैं। यद्यपि यह निश्चित है हम सब जीवोंका ज्ञान ही वास्तविक सर्वस्व है, तथापि उके विकासोंके प्रकारोंमें यह भी निर्णय है कि किस प्रकार ज्ञान हमारी सत्य शान्तिका कारण होगा और किस प्रकार ज्ञान हमारी शान्तिका कारण न हो पावेगा। लोग जानरीके अर्थमें कभी ज्ञान शब्दका प्रयोग करते हैं और कभी ज्ञान शब्दका प्रयोग करते हैं। यद्यपि ज्ञान विज्ञानका कहीं योग करने पर व्यापत्ति नहीं है तथापि प्रति शब्दशः अर्थकी समदृष्टि उपयुक्त करनेपर ज्ञान और विज्ञानके अर्थमें अन्तर या जाता है। ज्ञानका अर्थ जानन है, वहां मात्र जानन है,

राग द्वेषकी तरंगोंका लगाव नहीं है ऐसे जाननको ज्ञान कहते हैं। ज्ञानकी स्थितिमें चूंकि राग द्वेषका लगाव नहीं होता, अतः उसमें परपदार्थको विषय करनेका प्रयत्न नहीं रहता और इस ही कारण प्रायः स्व ही विषय रहता है। तब इसका प्रगतिशील विशद स्वरूप यों कहा जा सकता है कि जो ज्ञान ज्ञानको जाने वह ज्ञान है। विज्ञान शब्दमें दो शब्द हैं—वि और ज्ञान जिसका अर्थ है विविध ज्ञान। नाना पदार्थोंमें नाना पद्धतियोंसे होने वाले ज्ञानको विज्ञान कहते हैं।

विज्ञान शब्दके अर्थका विश्लेषण—विज्ञान शब्दमें वि का अर्थ विशिष्ट किया जावे तो विशिष्ट ज्ञान शब्दसे भी उपर्युक्त विज्ञान वाच्य है। विशिष्ट ज्ञान उसे कहते हैं जो विलक्षणताको, भिन्नताको लिये हुए हो सो विशिष्ट ज्ञान भी ज्ञानको जानने वाले ज्ञानसे भिन्न है। ज्ञानको जानने वाला ज्ञान अविशिष्ट होता है, वहां विशुद्ध प्रतिभास ही रहता है। यदि विज्ञान शब्दमें प्रयुक्त वि शब्दका अर्थ विगत करें तो विगत ज्ञान शब्दसे भी प्रकृत विज्ञान वाच्य होता है अर्थात् विविध पदार्थोंके ज्ञानमें ज्ञानका स्वरूप ज्ञेय नहीं है, अतः इस विशुद्ध ज्ञान परिणमनसे रहित है। यह ज्ञान विज्ञान। विज्ञानमें सर्व प्रकारकी साइंस, रेडियो, सिनेमा, रडार आदि सब आविष्कार आ जाते हैं। और गुण पर्याय पदार्थ आदिका सकल बोध भी विज्ञानमें आ जाता है। इस ही विज्ञान पर आजकल लोग

अपनी होड़ लगा रहे हैं और इसमें प्रगति करके भी शान्ति नहीं पाते हैं इसका कारण यह है कि वे ज्ञानसे हटकर विज्ञान में बढ़ते हैं।

ज्ञान और विज्ञानका इस प्रकरणमें नियमित अर्थ—इस प्रकरणमे यह दृष्टि बनाइयेगा कि यहाँ ज्ञान शब्दसे तो उस ज्ञानको लिया है जो सब विकल्पोंसे परे ज्ञानस्वरूपका मनन कर रहा है अथवा रागद्वेषसे परे रहकर ज्ञातृत्वकी स्थिति में रह रहा है और विज्ञान शब्दसे विविध ज्ञानोंको लिया है। यदि आप ऐसी दृष्टि न बनाकर सुनेंगे तो शंकित रहेंगे और प्रतिपाद्यका मर्म न जान सकेंगे। ग्रन्थोंमें भी अनेक स्थलोंपर ज्ञान और विज्ञानको जिस किसी भी जगह जिस चाहेका प्रयोग किया गया है, सो ठीक भी है वहाँ दोनोंका अर्थ जानना मान-कर किया गया है, जैसे भेदविज्ञान, भेदज्ञान, वीतराग विज्ञान, केवलज्ञान आदि। यहाँ भी भ्रम नही करना, क्योंकि साधा-रणतया ज्ञान और विज्ञानका एक ही अर्थ है। किन्तु जब ज्ञातृत्व स्थिति और नाना जानकारियाँ इन दो विषयोंको मुख्य उपयोगमें लेकर वर्णन करना है, चाहे उसे किसी भी शब्दसे कहा जाय तो हमें क्या-क्या झलकें मिलेंगी, शिक्षा लेगी यह उपलब्धि हमें करना है, इसी ध्यानसे सुनियेगा। इस प्रसंगमें इन दो विषयोंका अन्तर बताया जावेगा।

आत्मदर्शी और अनात्मदर्शीके स्वरूपका निर्णय—ज्ञान

का सम्बन्ध ज्ञानी पुरुषोंसे है जो कि परमार्थ अन्तस्तत्त्वका अनुभव कर चुका हो। अतः हम प्रथम आत्मदर्शीका स्वरूप जानें। आत्मदर्शीका स्वरूप जाननेके लिये अनात्मदर्शीका स्वरूप जानना चाहिये सो अब इन दोनोंका अर्थात् ज्ञानी व अज्ञानीका स्वरूप निरखिये। जिसने आत्माके नाते आत्मामें ही सहज बसे हुए आत्माके स्वरूपका दर्शन नहीं किया है उसे अनात्मदर्शी कहते हैं। ऐसे अनात्मदर्शी पुरुषोंको यह सुप्त अवस्था ही, पागलपनकी अवस्था ही विभ्रमरूप मालूम पड़ती है। इस सुप्त अवस्थामें अथवा पागलपनकी अवस्थामें वे जो कुछ भी करते हैं उसमें लोगोंको उनकी सावधानी नहीं जंचती है जिसे कि सब लोग जानते भी हैं। सोये हुए व्यक्तिके बारेमें लोग जानते ही है कि वह भ्रममें ही पड़ा है, उसको इन्द्रियां भी काम नहीं कर रही हैं उसे अपनी कुछ भी खबर नहीं है, यदि सांप भी उसके पाससे आ रहा है या बिच्छू आ रहा है या बहुतसी चीटियां उसके पास आ गई हैं या कुछ भी उस पर आपत्ति आ रही है तो देखने वाले लोग कहते हैं कि जरा इसे बचाओ। यह तो बेभुन्न है, सोया हुआ है। लोग भी ऐसा समझते हैं और पागलकी अवस्थाको भी लोग समझते हैं कि यह भ्रमरूप है। उससे कुछ अपराध बन जाय तो लोग दूसरों को समझाते हैं कि भाई तुम लोग क्यों बुरा मानते हो। यह तो पागल है लोग जानते हैं कि सोई हुई या उन्मत्त अवस्था

भ्रमरूप है। जागते हुए की हालतमें जो कुछ भी चेष्टा बनती है उसे वे भ्रमरूप नहीं मानते हैं, किन्तु जो आत्मदर्शी पुरुष है, जिन्हें आत्मज्ञान प्राप्त हुआ है, जिन्होंने परपदार्थोंकी उपेक्षा करके इन्द्रियोंको संयत किया है, जिन्होंने ज्ञानस्वरूप प्रतिभास मात्रको अपने उपयोगमें रखकर निज अंतस्तत्त्वका दर्शन किया है, ऐसे पुरुषोंको उन बहिरात्माओंकी सारी अवस्थायें, मोहमें की जाने वाली सारी चेष्टायें भ्रमरूप मालूम होती है।

सुप्त दशामें भ्रमको भ्रम माननेकी अशक्यता—अब जरा एक सोई हुई दशामें इसकी उपमा बनायें। और सोई हुई अवस्थामें भी जब कि इसे स्वप्न आ रहा है तो स्वप्नके समय में जो कुछ भी स्वप्न देखा, जो भी कल्पनायें की, बहुत बड़ा महल है, मैं राजा बन गया, लोग सेवामें आ रहे हैं, बड़े बड़े लोग भेंट ला रहे हैं, बड़ा खुश हो रहा है। उस स्वप्न आती हुई अवस्थामें अर्थात् सोती हुई हालतमें क्या वह यह समझ सकता है कि यह सब कुछ नहीं है, सब झूठ है, यह केवल स्वप्नमात्र है ?···ऐसा कुछ भी वह नहीं समझ सकता है। हाँ यदि वह जग जाय तो झट वह समझ जायगा कि अरे यहाँ तो कुछ भी नहीं है जो कुछ भी अभी देखा जा रहा था वह सब झूठ था, वह सब एक स्वप्नमात्र था। था कुछ भी नहीं, वह सब झूठ था, वह सब एक स्वप्नमात्र था। था कुछ भी नहीं, पर वह सब कल्पनासे माना जा रहा था।

जग जाने पर वह व्यक्ति कुछ भी संदेह नहीं करता। वह समझ जाता है कि वह सब भ्रम था। कहां है वह महल ? कहां हूं मैं राजा ? जो कुछ भी अभी देखा था स्वप्नमें वह तो कुछ भी नहीं है। यों जग जाने पर स्वप्नमें देखा गया सारा वृत्तान्त भ्रमरूप विदित होता है।

मोहनिद्रामें जीवनकी चेष्टाओंको भ्रमरूप माननेकी अशक्यता—अब मोहनिद्राकी बात देखिये—यह मोहकी नींद बहुत लम्बी है। वह तो दो चार मिनटका समय था जब कि स्वप्न आ रहा था, यह बहुत लम्बा समय है। एक तो इस जीवनको मान लो ४०-५०-६०-७० वर्षका जीवन है, इस जीवनमें मोही पुरुष मोहकी निद्रामें सो रहे है। उन्हें यहां जो कुछ भी दिख रहा है वह सब सही लग रहा है, यह मेरा घर है, यह मैंने धन कमाया, यह मेरा परिवार है, ये ही मेरे परिवारके लोग हैं, यह भी तो मेरा लड़का है सब कुछ इसीके लिए है, मैं तो अब सुखी हो गया हूं. मेरे आरामका क्या कहना है, पुण्यका उदय भी बडा अच्छा चल रहा है, सब सामग्री हमें प्राप्त हो गई है. मेरा बहुत सुखी जीवन है, यों सब कुछ एकदम सत्य दिख रहा है, पर यह समझमें नहीं आता कि अरे यह तो सब मायाजाल है, भ्रमरूप है. इसको हम कहां तक रखेंगे, ये सब अब भी हमसे भिन्न हैं, मैं तो इन सबसे निराला केवल ज्ञान प्रकाश मात्र हूं। यह सब न

विदित होनेके कारण ही ये मोही जीव इनमें मग्न हो रहे हैं, खुश हो रहे हैं, किन्तु ये मोही जीव जग जावें, इनकी मोह-निद्रा टूट जावे, इन्हें निज विशुद्ध ज्ञानस्वरूपके दर्शन हो जायें यह ज्ञानस्वभाव प्रतीतिमें ले लें कि मैं तो एक सहज ज्ञानस्व-रूप मात्र हूं, रागादिक, कषायादिक, विकल्पादि इन सबसे परे हूं, यों अपने आपके स्वरूपका इन मोही जीवोंको परिचय हो जाय तो फिर यह सब कुछ उन्हें भ्रमरूप मालूम होता है। ओह! यह सारा भ्रम था।

पूर्व भवोंकी तरह यहाँके समागमोंको भ्रमरूप मान लेनेकी प्रेरणा—जरा बतावो तो सही, अबसे पहिले अनन्त जन्म पाये और अनेक बार एवं संज्ञी पञ्चेन्द्रिय भवोंमें भी आये, तब कुछ नहीं समझा होगा, [illegible] होगा, वैभव मिला होगा, ये सब बातें हुईं, पर अब हमारे लिए वे सब बातें क्या हैं? उन सबका मेरे लिए क्या रह रहा है? इन भवोंके समागमोंके प्रति भी न सोच सकें तो कमसे कम इतना तो दृष्टिमें ले लीजिये कि पूर्वभवमें जो कुछ किया, बड़ा परिश्रम किया, रागद्वेष किये, द्वेष जलनमें जले, अपने आपको किन-किन मुसीबतोंमें डाला, व्यर्थ ही डाला, न डालते तो ठीक था, कुछ भी तो नहीं रहा। जैसे कोई पुरुष बहुतसे धनकी कमाई कर ले और वह सोचता है कि अरे मैंने तो व्यर्थ ही हाथ पैर पीटा तो यों ही इन अनन्त भवोंमें किये हुए कामोंके प्रति इतना तो

ख्याल भी तो पड़ता है कि मैंने व्यर्थ ही नाना विकल्प बनाये। उठा कुछ नहीं उनका जो बातें यहांके लिये सोची जा सकती हैं वे यहां भी सोची जा सकती हैं। यहां तो हम व्यर्थ अपने हाथ पैर पीट रहे हैं। हां गृहस्थावस्था है, उदयानुसार आ रहा है, हमारे विरोध करनेके बिना आसक्तिके बिना, उनको धुनि बनाये रहनेके बिना, गृहस्थीमें कर्तव्यमात्र पालने के नाते अगर लक्ष्मी बढ़कर भी आती है तो आये इसमें हम क्या मना करें? फिर गृहस्थोंका जो कर्तव्य है, जैसा कि बताया गया है उसको करें। उस धनका विभाजन करके कुछ धन अपने परिवारके लोगोंमें खर्च करें, कुछ अंश धनमें परोपकारमें लगावें कुछ अंश बचाकर रखें जो कि किसी भी समय काम आ सकता है, जो किस प्रकार भी विभाजन बताया है उसकी व्यवस्था बनायें, पर उसकी धुनि बनाये रहना, उसमें आशक्त रहना, यही कहलाता है हाथ पैर पीटना, क्योंकि रहना कुछ नहीं है, वियोग जरूर होगा। फिर आगे चलकर यह ख्याल करना होगा कि मैंने व्यर्थ हाथ पैर पीटा। अगर इसी समय यह ख्याल रखें, कि मैं व्यर्थ ही हाथ-पैर पीट रहा हूं तो इसमें कुछ अलौकिकता होगी।

भ्रान्तिसे विभ्रान्त स्थितिमें आदर्श परिवर्तन—मोहके बो हुए कषायोंका यह मोह आत्मदर्शी पुरुष ही भ्रमरूप नहीं समझ सकता है। आत्मदर्शन होनेपर, मोह दूर होनेपर

परमार्थ जागृत अवस्था होनेपर ही यह ध्यानमें आयेगा कि मैंने व्यर्थ ही हाथ-पैर पीटे । यह सारा भ्रमरूप है, यह सब कुछ दृष्टियोंपर निर्भर है । कौन कल्पना कर सकता था जब उदय-सुन्दरका बहनोई वज्रबाहु जो कि स्त्रीमें इतना अधिक आशक्त था कि जब उदयसुन्दर अपनी बहिनको लेने आया तो वज्रबाहु भी उसके साथ चल दिया । आजकल कोई करता होगा क्या ऐसा कि अगर साला अपनी बहिनको लेने आये और वह भी पहली बारमें, तो वह पति भी उसके साथ चल दे हमने तो भाई ऐसा देखा नहीं, न सुना है । तो अंदाज करो कि वह बज्रबाहु अपनी स्त्रीमें कितना आशक्त था ? क्या उसके विषय में यह कल्पना की जा सकती थी कि क्षण भरमें ही वह सर्व से अपना नाता तोड़ लेगा, पर होता क्या है कि जब वे तीनों अर्थात् वज्रबाहु, उदयसुन्दर और उदयसुन्दरकी बहिन ये तीनों एक जङ्गलमें निकले तो उसी जंगलमें एक मुनिराज परमार्थ तपश्चरणमें लीन दिखे जिनके मुखपर शान्त मुद्रा बिखर रही थी । इतना विशुद्ध आनन्द, जो अपने आत्मतत्त्वको उपयोगमें लेकर उसका रस चख रहा है, उसकी मुखमुद्रा भी दर्शनीय हो जाती है । जैसी मुद्रा अन्य किसी भी हर्षमें, किसी सांसारिक आनन्दमें आप नहीं पा सकते हैं । उसका कोई दूसरा ही दर्शन करके आनन्द लूटता है । वह तो आत्मदर्शनका ही रस लिया करता है । यों कोई जबरदस्ती मुस्कराये या किसीके

रागमें आकर मुस्कराये, तो उस मुस्करानेसे इसके मुस्करानेकी उपमा नहीं दी जा सकती है। जो आत्मानुभवके रसमें तृप्त हो रहा है उसके जो सहज मुखमण्डल पर शान्तिकी मुद्रा टपकती है वह शांति अन्य किसी जगह नहीं टपकती। वे भी सौभाग्यशाली पुरुष है जो किसी आत्मदर्शीको शान्तमुद्राका दर्शन कर सके। तो वे तीनों गये थे जङ्गलमें। जब मुनिराज को देखा तो वज्रबाहुका चित्त तुरन्त ही एकदम परिवर्तित हो गया। यही है सार तत्त्व, और वह थी हमारी भूल। टकटकी लगाकर देखता रहा कुछ देर तक मुनिराजकी शान्तिको।

भावविशुद्धि होने पर सिद्धिकी सुगमता—वज्रबाहुकी भावभीनी स्थितिके समयमें उदयसुन्दर बाला मजाकमें, क्योंकि वह जान रहा था कि यह महामोही व्यक्ति मुनि कैसे बन सकता है, बोला कि क्या तुम मुनि बनना चाहते हो? संभव है कि उस वज्रबाहुके चित्तमें मुनि बननेकी बात समा भी गई थी, लेकिन थोड़ा यह चित्तमें रखे हुए था कि ऐसे भयानक जंगलमें इस सालेकी बहिन और सालेको किस तरहसे विदा करूँ और मुनिराजके निकट रहकर दीक्षित होकर इनके ही समान अपनी ही चेष्टासे इस आनन्दको लूँ। यह समस्या भी उस सालेकी मजाकसे हल हो गई। तुरन्त उत्तर निकला कि क्या हम मुनि बनेंगे तो तुम भी बनोगे? इस उत्तरमें वज्रबाहुका यह भी विशुद्ध आशय हो सकता है कि ये बेचारे भी

क्यों इस संसारमें रुलते रहें। इनको भी अगर इस सत्यपथका आनन्द मिल जाय तो भला है। रिस्तेदारी और कुटुम्बपनेका सम्बन्ध तो तभी सफल है जब कि एक दूसरेको धर्मपथ पर लगा दें। तो वज्रबाहुको उदयसुन्दरका उत्तर मिला कि तुम मुनि होओगे तो हम भी मुनि बन जावेंगे। उदयसुन्दर जानता था कि यह क्या मुनि होगा। अभी तक साले उदयसुन्दरके चित्तसे सांसारिक राग न हटा था। मुनिराजके दर्शन तो तीनोंने किये, मगर वज्रबाहुने अपनेमें वह प्रभाव पाया। उदय सुन्दरकी बात सुनकर तत्काल ही वह मुनिराजसे दीक्षित हो गया और वह अपने आत्मीय आनन्द उसमें मग्न हो गया। इस घटनाका उदयसुन्दर पर बड़ा प्रभाव पड़ा। ओह! इतना तीव्र मोहमें फंसा हुआ यह पुरुष था, कैसा यह एकदम परिवर्तित हो गया। उसमें वे सब बातें दिखने लगीं जो मुनिराज में दिख रही थीं। अभी स्त्री इन सारी घटनाओंको निरख रही हैं। वह अपने शोकमें डूबी होगी। हाय यह क्या हुआ? यह कैसी अनहोनी घटना एकदम हो गई। उस स्त्रीको तो अब अंधेरा ही नजर आता है। उसको अब यों हालत हो रही है। पर कुछ एक विचित्र आश्चर्यजनक बात होने पर उस शोकमें रहकर भी उन आश्चर्यजनक बातोंको निरख रही थी। उस घटनाको निरखकर उदयसुन्दर भी आनन्दविभोर होकर आत्मदर्शनके सारको समझकर अन्य सबको असार जानकर

तत्काल वहीं दीक्षित हो गया। इतनी घटना हो गई, वह स्त्री आश्चर्यचकित होकर निरख रही थी। उसकी समझमें सब आ गया। उसके भी भीतरकी मोहग्रन्थि दूर हो गई, उसने भी आत्मदर्शन पा लिया। देखिये उपदेशका भी प्रायः उतना नहीं असर पड़ता है जितना कि घटनाओंका पड़ जाता है। तो वह भी परिवर्तित हुई। उसने भी आत्मदर्शनका रस पाया, वह भी वहीं आर्यिका हो गई। लो क्या हो गया? न वज्रबाहुके घर वालोंको मालूम कि वह कहाँ है और न उदय-सुन्दरके घर वालोंको मालूम कि वे कहाँ हैं? न इन्हें मालूमात करानेकी आवश्यकता थी। जब खुद ही खुदमें मग्न होकर निर्विकल्प आनन्द पाता है तो उसे बाहरमें क्या जरूरत है कुछ भी परिचय करानेकी, जतानेकी?

आत्मजागरणका प्रकाश—जब यह मोहनिद्रा टूटती है जागृत अवस्था होती है उस आत्मदर्शनके होने पर ही यह विदित होता है कि यह सब भ्रमजाल है। हम इस कथनसे इस प्रकरणसे, अपने आपके बारेमें भी तो सोचा करें कि हम जो कुछ कहते हैं, बोलते हैं, चलते हैं, हम उसमें अपना बड़ा ज्ञान समझते हैं, लेकिन ये सब चेष्टायें भ्रमरूप हैं, मेरे स्वरूप नहीं हैं। ज्ञान और विज्ञानमें अन्तर क्या है? ज्ञान निर्विकल्प चैतन्यरसकी ओर उन्मुख करता है, किन्तु विज्ञान विविध निर्णयों विकल्पोंकी ओर चलता है। नाना शास्त्रोंको जानत

हुआ भी जब तक यह मोह छूटता नहीं है, अपनेको सही रास्ता मिलता नहीं है जब तक कि मोहका उदय है, और विकल्पोंको अपना रहे हैं। हम आप पढ़े-लिखे लोगोंको यह बात सोचनी चाहिए कि यह सब एक जाल है। अभी हम और आगे चलें, कहीं अंतरंगमें और उस पथको प्राप्त करें जिस पथपर चलने पर जहाँ पहुंच बनती है उसमें राग विरोधका नाम नहीं है, ये सब चेष्टायें भ्रमरूप हैं। आये गये, बैठे, चले और धर्मके नाम पर भी जो चेष्टायें की, खोज करें उन सब बातोंमें, राग की प्रेरणा है तो विभ्रम है अनात्मतत्त्व है। एक ज्ञानस्वभाव पर दृष्टि होनेसे जो आल्हादका अनुभव किया ऐसी जो अन्तःपरमार्थ चेष्टा हुई वह तो है परमार्थजागरण और बाकी तो जो भी कार्य हैं वे सब रागके ही कार्य हैं, ऐसी जब जागृत अवस्था होती है तब विदित होता है कि अहो ! यह सारा का सारा समागम भ्रमरूप है।

आत्मालोचन—भैया ! अपनी अपनी बात सोचो, कितनों से राग किया, किन-किनसे राग किया, किन-किनसे विरोध किया, किसको अपना माना, किनसे द्वेष किया, किनसे ईर्ष्या हुई, अरे यह सब हमने अपनी बरबादी की। किया किसीका कुछ नहीं। दूसरेका कौन क्या करेगा ? विकल्प करके राग विरोध करके, अपने ही आप अपनेमें अपनेको बड़ा सरदार समझ करके कुछ भी अपनेमें कल्पना कर लीजिए, वह उनकी

खुदकी विकृत अवस्था है दूसरेका वह करेगा क्या ? वस्तुस्वरूप ही ऐसा है, प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वरूपके दृढ़ दुर्गमें सुरक्षित पड़ा हुआ है। उनका बिगाड़ होगा उनके परिणमनसे। दूसरेके बिगाड करनेकी रात दिन धुन बनाये रहना यह भी हमारे लिए लाभकर नहीं है। ये सब बातें भ्रमरूप हैं। भ्रमरहित अवस्था होने पर सबसे निराला सबसे आला जो अपने आपका स्वरूप है उस स्वरूपका अनुभव होनेपर ये सब बातें सही रूपसे मालूम होती हैं कि ये सब भ्रमरूप हैं। जो-जो भी अब तक आचरण किये, चेष्टायें कीं वे सब अज्ञानमें चेष्टायें हुईं, ऐसा ज्ञानी पुरुष चिन्तन करता है।

अपनी सम्हालमें अपनी उपलब्धि—आत्मस्वरूपकी दृष्टिमें आत्माकी रक्षा है। जैसे बहुतसी बुढ़ियाँ वृन्दावन जाती हैं जहाँ कि बडा लम्बा सफर करती हैं, वे इस तरहसे अपनी पोटली रखती हैं कि कहीं उनकी कोई चीज गुम नहीं जाती, पर जो दुनियावी भले आदमी होते हैं, जिनको एक दूसरेके सामानकी बड़ी फिक्र रहती है, उनका कुछ न कुछ खो जाता है। तो चूंकि वे बुढ़िया अपनी अपनी पोटली अपने-अपने हाथमें, अपनी-अपनी देखरेखमें रखती हैं। इसलिए उनकी कोई चीज नहीं गुम पाती और जो दूसरोंकी चीजकी परवाह करते हैं उनकी कोई न कोई चीज गुम जाती है। ऐसे ही समझ अपन लोग एक ऐसी गोष्ठी बनायें जिसमें मात्र आत्महित

की जाती है, वस्तुका निर्णय अनेक विध योग किया जाता है, पर जब एक साधनाकी हाल ले कोई मुझे तो एक अनिर्व चाहिए, किसी भी नाम पर मुझे विपदा स्वीकार नहीं है ऐसी अपने आपमें आत्मोद्धारकी अभिलाषा करके ऐसा पुरुष साधनके पथ पर बढ़ता है, और उस साधनाके अन्त उसकी स्थिति, उसका ज्ञान एक निरन्तर निश्चित ... जो कुछ भाव है सब स्वतन्त्र और स्वच्छ होता है। ज्ञान और विज्ञानमें इतनी कमीका अन्तर है। ज्ञान तो ... तो और कुछ ... और विज्ञान उसका निर्णय ... है।

विज्ञानका विषय— यों विज्ञान शब्दकी व्याख्या ... बहुत अर्थमें भी ग्रहण कर लेते हैं, पर शास्त्रीय दृष्टिसे विज्ञान शब्दका अर्थ जाना जाय तो उस ज्ञानके साथ जो कि उत्सर्ग लगा है तो उस ज्ञानसे जो आत्माका सच्चा स्वरूप है उसमें कुछ परिवर्तन होना चाहिए। जैसे ... पर लगता है तो ... ही व्याख्या है ... करके अपनी ... होकर ... जीवाके अन्दर बहुत कुछ अंशमें ... उसका स्वभाव है। इस प्रकार कुछ धातुओंके साथ ... लगा देते हैं, इनके प्रभावमें वे अपने शुद्ध स्वरूपको ... स्वभावकी विलक्षणता बिल्कुल न छोड़ करके ... अपना विकास कर लेते हैं। जैसे हृ इसमें एक धातु है, हृ शब्दका अर्थ हरण है। उसके साथ

जब उपसर्ग लगा बैठते हैं विहार, निहार, आहार, संहार, प्रहार, अपहार, उद्धार, परिहार, उपहार आदिक तो उनका अर्थ अपने एक विशुद्ध आशयसे हटकर कुछ अन्य-अन्य आशयोंमें भी चला जाता है, पर हरणका मूल भाव उपसर्ग लग जानेपर भी सभी शब्दोंमें बना रहता है। प्रहार हो वहाँ भी कुछ हरण आया। स्थानसे स्थानान्तर ले जानेका नाम हरण है। आहार, निहार, उपहार आदिक सबके अन्दर देखते जाइये, उपहार तो एक बहुत अच्छे गौरवमें प्रयुक्त होता है, पर वहाँपर भी हरणका मूल भाव तो निहित है, ऐसे ही ज्ञान शब्दके साथ वि उपसर्ग लग गया। अब इस विज्ञानका चाहे हम विविध ज्ञान अर्थ करें चाहे विशिष्ट ज्ञान कहें, ज्ञानकी जो शुद्ध दृष्टि है उस शुद्ध दृष्टिसे कुछ अलग इसकी बात बन जाती है।

सामान्यका महत्त्व—अध्यात्मपथ पर सामान्यका जो महत्त्व है उसे विशेष नहीं प्राप्त करता साधनामें। लोकव्यवहारमें तो साधारणका प्रयोग कुछ हेय और निंद्य जैसे आशय में किया जाता है और विशेष शब्दका प्रयोग महत्त्वके आशय में किया जाता है। जैसे कहते हैं कि यह विशिष्ट पुरुष है, इसका यहाँ विशेष स्थान है। सामान्य शब्दका लोक व्यवहार मे महत्त्व नहीं है, विशेष शब्दका महत्त्व है, पर अध्यात्मसाधनाकी ओर बढ़ने वाले पुरुषको उस सामान्य स्वरूपमें सहज

प्रयोजन रहे, दूसरोंकी चिन्तायें न सतायें। ऐसे मात्र आत्म-हितमें सावधान रहने वाले लोग अपनी कुछ भी चीज न गुम कर पायेंगे और अपने उद्देश्यको बहुत ही आसानीसे पूर्ण कर लेंगे। ये सब बातें भ्रमरूप हैं। तो अपना कुछ ऐसा समय बनाना चाहिए कि जिस समय सर्व लगाव सर्व विरोधादिको हटाकर अपने आपमें परम निराकुल ज्ञानानुभवके निकट पहुंचे ऐसी कुछ स्थिति हमें बनानी चाहिए तब तो हम अपने आप पर दया कर रहे हैं, नहीं तो पूर्ववत् निर्दयतासे अपने आपके साथ अपना व्यवहार रख रहे हैं।

ज्ञानकी सत्य शरणता—हम आपका निरपेक्ष नित्य शरण सर्वस्व एक विशुद्ध ज्ञान है, निर्मल ज्ञान है। जिस ज्ञान के साथ रागद्वेषकी तरंग कुछ बाधक न बन रही हो ऐसा ज्ञान यद्यपि जिस किसी भी पदार्थको जानकर भी रह सकता है, किन्तु जिन जीवोंमें राग द्वेष करनेकी प्रकृति पड़ी है, अभी वासना है, ऐसे मनुष्योंका यह कर्तव्य होता है कि वे अपने ज्ञानका प्रयोग एक ज्ञानस्वरूपके जाननेमें करें। परपदार्थोंके जाननेमें जान बूझकर अधिक दृष्टियां देना, उपयोग देना, इसके बजाय यह हितकर होगा कि हम अपने आत्माके ज्ञानस्वरूप को जाननेका यत्न अधिक रखें। निर्णय और साधना ये दो विषय सम्बन्धित होकर भी अपना न्यारा-न्यारा महत्त्व रखते हैं। निर्णयके प्रकरणमें तो बहुमुखी सब तरफकी दृष्टियां रखी

स्वरूपमें निर्विकल्प स्वरूपमें अवशिष्ट स्वरूपमें अपनी रुचि दृष्टि और महत्त्व जताना होता है जिससे वह साधनाके उस मार्गमें चलता है और इसी कारण शुद्धनयके स्वरूपके वर्णनमें अविशिष्ट तत्त्वको निरखनेकी बात कुन्दकुन्द स्वामीने मुख्यतया बतायी है।

ज्ञान विज्ञानमें साधना निर्णय जैसा अन्तर—निर्णय और साधना जैसे ये दो सम्बंधित होकर भी जुदे जुदे बताये हैं, इसी प्रकार ज्ञान और विज्ञान ये भी सम्बंधित होकर जुदे-जुदे बताये गये हैं. विविध ज्ञान, नाना प्रकारके ज्ञान, हर दृष्टि के ज्ञान, वैज्ञानिकोंके भी ज्ञान, ऊँचे ऊँचे ऐसे ऐसे सूक्ष्मताको लेकर भी नाना ज्ञान चलते हैं उन सबको बिज्ञान कहते हैं। यह विविध ज्ञानकी बात है, विशिष्ट ज्ञान जो एक ज्ञान सहज साधारण रूपसे प्रतिभासको लेकर अपने आपमें परिसमाप्त होकर प्रतिभासपनेको ही उत्पन्न करता रहता है उस ज्ञानमें विशिष्टता नहीं होती। जैसे कुछ विशेष है, वह विकल्पके सम्बन्धसे विशेष बना है तो विशिष्ट ज्ञान कह दें, विविध ज्ञान कह दें, विगत ज्ञान कह दें, जहाँ ज्ञानकी वह एक विशुद्ध अवस्था हो, जहाँ मात्र प्रतिभास हो, प्रतिभासका ही जहाँ परिग्रहण ही ऐसी अवस्था जिसमें हो, ज्ञान तो वह है। इसका विषयभूत अर्थ स्वयं है, अतः यह छूटता नहीं कभी। विज्ञान शब्दका भी प्रयोग ज्ञानके बदले कर देते है, किन्तु शब्दके अर्थ

को मुख्यता न रखकर जैसे प्रयोगमें बहुतसे शब्द सूक्ष्म मायनों पर निगाह न देकर प्रयोग करते रहते हैं इसी प्रकार विज्ञान का शब्द भी ज्ञानके अर्थमें प्रयुक्त होता है फिर भी शब्दकी निगाहसे ज्ञान और विज्ञानका अर्थ जानें। यदि इसे बहुत सीधे शब्दोंमें कहें अध्यात्मपद्धतिके प्रसंगमें कि जो ज्ञान ज्ञानस्वरूप को जानता है वह ज्ञान ज्ञान है और जो अनेक विविध निर्णय रखकर जानता है वह विज्ञान है तो यह उपयुक्त ही होगा।

आत्मदर्शीका ज्ञानपर अधिकार—आत्मदर्शी पुरुष जिस समय ज्ञान द्वारा अपने आपके उस सत्य यथार्थ भूतार्थ सहज स्वरूपका भान कर लेता है उस ही में यह मैं हूं इस प्रकारका अनुभव कर लेता है तब इस अनुभवके कारण जो एक अविशिष्ट विशुद्ध आनन्द प्राप्त होता है उस आनन्दका अनुभव प्राप्त करने वाले आत्मदर्शी पुरुषको फिर यह स्पष्ट विदित होता है कि यह सारा जगजाल विभ्रम है, लौकिक जनोंको यह मालूम हो रहा है कि यही तो सार है, सब कुछ यही तो सत्त्व है, वाह लोकमें हम न बढ़े, नामवरीमें हम न बढ़े, हम दुनियामें अपना यश न फैला सके, लोग मेरी बात न गा सके, मेरा नाम लेने वाले बहुत न हो सकें तो फिर यह जीवन किस काम का? अनात्मदर्शी पुरुषोंको यह चिन्तना रहती है, इसी कारण वे अपने आपको सुधको किसी भी क्षण नहीं कर पाते, क्योंकि ध्यान इस ओर लग रहा है। जिस किसी भी प्रकार हो, चाहे

सर्वस्व खर्च करके भी हो, किसी प्रकार हो अपनी नामवरी होनी चाहिये, तो इस दृष्टिमें इतनी अशक्ति है और इतनी विमुख दृष्टि है कि वे अपने आपकी सुधि नहीं ले सकते हैं। आत्मदर्शी पुरुष इन वाञ्छावोंसे रहित होता है, उसे केवल एक अपने आपकी धुनि है। कैसे आत्महित हो बस यही समस्या उसके सामने है, अन्य बातें नहीं। रागद्वेष भावोंको वह अपना बैरी मानता है, चाहे वह राग किसी भी विषयका मौज बढ़ानेकी ओर हो, लोकमें सबको वह अपनी बरबादीका हेतु मानता है, इनसे हटनेका उसके अंतरङ्गमें भाव रहता है, इसकी धुनि, इसकी बुद्धि इस ओर ही लगी रहती है। आत्मदर्शीकी बुद्धि अपने आपके स्वरूपके जाननेके लिए, अनुभवनेके लिए उस स्वरूपका ज्ञान करनेके लिये वहीं जगतमें बना रहे इसके लिए तत्पर बुद्धि रहती है, क्योंकि इसको यह श्रद्धान उत्पन्न होता है कि हित इसीमें है, सार ही है यह।

यशोलाभकी अभिलाषाकी सारहीनता—देखो भैया! लोकमें अनन्त जीव हैं, हम भी उनमें एक हैं। अनन्त भव बिता दिये आज हम आपको नामवरीके लिये कितना क्षेत्र मिलेगा? अनेक भवोंमें इससे कई गुने क्षेत्र मिले जहाँ यश फैलाया होगा। कितने मनुष्योंमें आज यश फैलाया जा सकता है? कई भवोंमें इससे भी अधिक कई गुने लोगोंमें व क्षेत्रोंमें यश फैलाया होगा, लेकिन उससे हुआ क्या, ये सब किस काम

आते हैं और यशकी भी बात है क्या ? लोग बड़े अपने वैभवको भी त्यागकर खर्च कर लुटाकर अपनी बड़ी-बड़ी नामवरियोंके लिए प्रयत्न करते हैं, नेता होकर वे क्या प्राप्त कर लेते है ? यदि इन शब्दोंमें कहा जाय तो इसमें कुछ अतथ्य न होगा कि जो मूढ पुरुष हैं व्यवहारविमूढ हैं, मिथ्यादृष्टि हैं, जिन्हें अपने आपकी सुध नहीं है ऐसे ही तो लोग हैं लाखों और करोड़ों, उनमें ही तो यशकी वांछा चल रही है। तो यों समझ लीजिए कि इन मलिन मिथ्यात्वग्रस्त पुरुषोंमें हम चाहते हैं कि मेरा नाम हो, इनकी अपेक्षा यदि किसी ज्ञानीके ज्ञानमें यह झलक हो उसके प्रति कि यह सम्यक्त्वमें है और सत्पथपर चल रहा है और शीघ्र ही संसार-संकटोंसे मुक्त होगा तो उसके ज्ञानमें आयी हुई बात उसके महत्त्वकी है, पर लाखों पुरुषोंमें हम अपना नाम यश फैला लें यह हमारे लिए कुछ महत्त्वकी बात नहीं है। इससे हम अपने ज्ञानका अधिक महत्त्व समझें हम अपने आपका महत्त्व समझें हम अपने आपको इन्हीं बाह्य बातोंमें गिरा न दें। जैसे दृष्टान्त अनेक होते हैं कि कोई कौवाके भगानेके लिए मणि फेंक दे, कोई बर्तन मलनेके लिए राख चाहिए थी सो चन्दनके बनोंको जला दे। इस प्रकार यदि हम आप इन्द्रियविषयोंके साधनोंके लिए ही इस दुर्लभ मनुष्यभवको बिता दें तो क्या यह कहना ठीक न होगा कि इस दुर्लभ नरजीवनको व्यर्थ ही गंवा दिया गया।

अपनी जिम्मेदारीके सम्हालका अनुरोध—भैया ! हम आप पर जन्म-जन्मांतरमें भी दुर्लभ इस मानवजीवनको पाकर बहुत बड़ी जिम्मेदारी आ गई है, संसारके अनेक जीवोंको देखिये, वे क्या कर सकते हैं ? कैसी उनकी दयनीय स्थिति है, स्थावर कीड़ा मकोड़ा पतिंगे आदिकी स्थिति तो स्पष्ट दिख रही है, पर जो पशु-पक्षी भी हैं, संज्ञी पंचेन्द्रिय हैं उनकी भी परिस्थितियाँ देख लीजिये । वे अपने भाव किसी दूसरेको बता नहीं सकते । शब्द उनके पास बोलनेको नहीं, साहित्यसे उनका सम्बंध नहीं, और वे किसीके बंधनमें भी फंस जाते हैं । मनुष्य उनपर कितने ही अन्याय भी कर देते हैं । लदे चले जा रहे हैं भैंसे, उनके कंधेसे खून भी निकल रहा है, हाड़ भी उनके निकले हैं, पर जब तक वे १०५ फिट भी सरक सकें, इतना भी उनसे काम निकालनेकी आशा हो तो मार-मारकर भी किसी भी तरह उनको जोतते हैं, वे बेचारे अपनी जीभ निकालकर विवश होकर उस मनुष्यसे प्रेरित होकर काममें जुटे रहते हैं । कितनी पराधीनता है ? पशु-पक्षियोंपर भी दृष्टि डालें । जो जीव जलाये जाते हैं उनपर दृष्टि डालिये । ये सूकर आदिक बड़ी बेरहमीसे मारे जाते हैं । मांसकी ताजगी चाहनेके लिये जलती आगमें पैर बाँधकर यों ही पटक दिये जाते हैं बेचारे जलकर अपने प्राण गंवा देते हैं । मुर्गा मुर्गी आदि पक्षियोंकी भी ऐसी ही दयनीय दशा लोग कर देते हैं, तं

अन्य जीवोंकी दृष्टि करके जरा सोचिये तो सही कि हमने अपने आपमें कितनी श्रेष्ठता पायी है, कितना उत्कृष्ट समागम प्राप्त किया है ! यह जैनशासन जिसमें तत्त्वका उपदेश भरा हुआ है, जो हमारा हित कर सकता है, जो हमारे लिये शरण हो सकता है ऐसा तत्त्वावलोकन पानेकी क्षमता इस जैनशासनने दिखाई है। ऐसे उच्च समागममें आकर भी हम एक रागद्वेष के आधीन होकर अपने आपमें व्याकुलतायें उत्पन्न करके, अपने आपमें क्षोभ मचा करके हम अपने आपको पतित करके, आगे के लिए हम अपने संसारकी यात्रा ही बढ़ा लें, इसमें कुछ हित है क्या ?

ज्ञानमें ही अधिकारका अधिकार—भैया ! जरा शान्ति से सोचिये तो, अपनी जिम्मेदारीको, अपना अधिकार बतानेकी बात हममें तब तक घर नहीं कर सकती है जब तक कि हम वस्तुके स्वतंत्र स्वरूपका परिज्ञान न कर सकें। यह सब जगत है, निमित्तनैमित्तिक भावोंका सम्बंध है, व्यवस्था यों चल रही है निर्णय हो गया, अब निर्णय करके हम उस ही पर-तत्त्वकी गाथा गाते रहें, अपने आपके स्वरूपकी दृष्टि न करें, एकत्वकी भावना न बनायें, मेरा कैवल्यस्वरूप, मेरा स्वयंका अपने आपका अपने ही सत्त्वके कारण क्या स्वरूप है, इसके हम प्रेमी न बनें, इसकी हम धुन न बनायें तो फिर सोच लीजिए कि हम शान्ति और किस जगह पायेंगे, तृप्ति हमें और

किस जगह मिलेगी, क्षोभ हमारा किस तरह शान्त होगा ? ज्ञानकी अद्भुत महिमा है । ज्ञान समान न आन जगतमें सुख का कारण । इस ज्ञानके समान जगत्में अन्य कोई सुखका कारण नहीं है । ज्ञान हमारा विशुद्ध हो और जहाँ अतृप्ति रहे, घबड़ाहट रहे, बाधा रहे, तड़फन रहे तो समझिये कि हमने उस ज्ञान तत्त्वको नहीं अपनाया । हम ज्ञानार्जन करें, विद्या प्राप्त करें, और उस विद्याका उपयोग हम आत्मशान्ति के लिए करें, एक साहित्यिक कलासे ५ इन्द्रिय और मनके विषयोंके सेवनके लिए पायी हुई विद्याका यदि हम प्रयो करते हैं तब समझिये कि यही काम पशु-पक्षियोंने भी किया उनके कलायें नहीं चलती है, सो वे कलाहीन रहकर सी उजड्ड रूपमें विषयोंका सेवन करते हैं और ये पढ़े लिखे मनुष कलापूर्ण ढंगसे विषयोंका सेवन करते हैं, अन्तर क्या रहा अन्तर तो यहां पाइये, अपने आपमें अपनेको बसानेके लि अपनी शुद्ध रुचि प्रगटाइये । क्या चाहिए—इसके उत्त मात्र एक यह सहज अंतस्तत्त्व हो, इसकी उपलब्धि चाहि मिला हो तो, न मिला हो तो उसीका परिज्ञान करिये बो अंदाज कर ही लिया होगा कि शरण मिलेगा तो अपने आपमें मिलेगा । तब फिर उसकी धुन बन जाय, उस रुचि बन जाय और उस धुनिसे हम उत्तरोत्तर अपने शान्तस्वरूपको पाते जायें । हम आपका बस शरण है तो

निर्मल ज्ञान शरण है, इस ज्ञानका हमें आदर करना होगा और अपने आपको शांत रखनेके लिए अंतः यत्न करना होगा।

परसम्पर्कके प्रभावसे बच लेनेमें आत्मरक्षा—देखिये इस विनश्वर लोकमें जो इन चर्म-चक्षुओंसे दृष्टिगत होता है सभी समागम, वहाँ सभी लोग अपना कार्य प्रायः इसी आशयमें तो करते हैं जैसे कि हिन्दीमें कहावत है—'चढ़ जा भाई बाँसपर भला करेगा राम' इसी प्रकारके करने वाले दुनियावी लोग हैं, उन्हें दूसरेके हितकी कुछ गर्ज नहीं है। जिस प्रकारसे मनोरञ्जन हो, जिस प्रकारसे विषयोंका साधन हो, उस प्रकारसे लोग व्यवहार करनेमें चतुर हुआ करते हैं, लेकिन ज्ञान पाया है, जैनशासन पाया है, कुछ अपने आपका बोध पाया है तो हम दुनियाके बहकानेमें न आयें, क्योंकि दुनिया तो प्रायः मोहियोंसे भरी है। जैसे आजकल वोटोंकी प्रथा है, अगर अपने बारेमें, आत्महितके बारेमें कोई इन प्रजाजनोंको वोट ले तो क्या वह तरीका सही बैठेगा? अरे वोट मिलेगी मोहियोंको, मिथ्यादृष्टियोंकी। वे अपनी ही बात कहेंगे। हमें तो अपने आपसे बात करना है, और जो ऋषि संत जनोंने इस दिशामें अपने अनुभव लिखे हैं उनसे लाभ उठाना है। यों ही अपने आपके उद्धरणके लिये अपना जीवन मानें और रागविरोधके लिए हम अपने जीवनको न समझें। उद्देश्य अगर हमारा सही होगा तो हम अपने हित कार्यमें सफल हो सकें

हैं।

ज्ञानविभाग और लौकिक विज्ञान—ज्ञानके फैलावको तीन श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं—लौकिक विज्ञान, अलौकिक विज्ञान और ज्ञान। लोकके इन समस्त विज्ञानोंको जिसमें कि बहुत दिमागसे निकले हुए आविष्कार भी हैं, वे सब लौकिक विज्ञान कहलाते हैं। जितने ये सब आजके समयमें फैले हुए वैज्ञानिक आविष्कार हैं, जिनको देखकर ही लोग अचरज करते हैं, एक यही रेडियो वाली बात किस जगह चल रही है और यहां सर्वत्र सुन रहे हैं। वे शब्द इस प्रेरणापूर्वक विस्तृत हुए हैं कि वे सर्वत्र यहां उपस्थित हो गए हैं। रेडियो को कैसी मशीन है, क्या उन्होंने वहां आविष्कार किया है कि वे शब्दोंको ग्रहण करते हैं और उनसे शब्दोंमें अभिव्यक्ति हो जाती है। ऐसी एक क्या अनेक बातें हैं। जो इतने ऊँचे आविष्कार हैं वे सब भी लौकिक विज्ञानके फल हैं।

अलौकिक विज्ञान—अलौकिक विज्ञान, इसका सम्बन्ध ज्ञानको सन्मुखताके लिए भी है, षट् द्रव्योंका, पंच अस्तिकायों का, सप्त तत्त्वोंका, नव पदार्थोंका, गुण पर्यायोंका जो कुछ भी निर्णय है अनेक दृष्टियोंसे उनका जो कुछ प्रकाश है वह सब अलौकिक विद्या है। जो साधारण लोग न कर सकें वह सब और जो हमारे ज्ञान मार्गके लिए सहायक बन सके वह अलौकिक विज्ञान है। उन सब विज्ञानोंसे निर्णय पाकर आत्म-

हितैषी जन इस दिशामें बढ़ते हैं कि वहाँ इन विज्ञानोंके विस्तार विकल्प भी गौण हों और एक ज्ञानस्वभावका प्रत्यय, दर्शन जानन, अनुभवन बने, इसके लिए यत्नशील होते हैं। तब यों कह सकते कि अलौकिक विज्ञान साधन है और ज्ञान साध्य है।

ज्ञानका महत्त्व—जब गुरुका स्वरूप कहा तो समन्तभद्राचार्यने तो एक विशेषण दिया ज्ञानध्यानतपोरक्त. सामान्यतया तो यों अर्थ किया गया जो ज्ञान ध्यान तपश्चरणमें अनुरक्त है, ज्ञानमें आये, स्वाध्याय, पठन-पाठन आदि विधिमें प्रवृत्त हो या ध्यानमें आये या तपश्चरणमें रहे यह भी अर्थ उपयुक्त है, पर एक विधिसे इसके पूर्वापर विचार करके इसका मर्म जाना जाय तो उसमें एक यह धुनि भी निकलती है कि साधुका मुख्य काम मात्र एक ज्ञान हैं। जब ज्ञानमें स्थिर न रह सके तो उनका काम ध्यान है, ध्यानमें स्थिर न रह सके तो उनका काम तपश्चरण है। इस क्रम वाली विधिमें ज्ञान का अर्थ होगा—केवल ज्ञाताकी स्थिति बनाये रहना और जैसे अध्यात्मपद्धतिमें कहा कि ज्ञानस्वभावकी उपादेयताकी तीव्र रुचि होनेके कारण उस ही के निकट उपयोगको बसाना, वह स्थिति है उनके ज्ञानकी स्थिति। जब इसमें न रह सके, तब वह ध्यानमें आता है। अब इस ध्यानमें ज्ञान और विज्ञानका योग हो गया है। अनेक तत्त्वोंका चिन्तन, अनेक द्रव्य गुण

पर्याय शक्ति उनके सम्बन्धमें चाहे किसी भी प्रकारका चिन्तन चले, अलौकिक विज्ञानमें आये तो वह है उनका ध्यान। और ध्यानमें भी जब मग्नता न रही तो उनका कार्य रहे तपश्चरण, जो नाना प्रकारके कायक्लेश आदिक, प्रायश्चित वैयावृत्य आदिक तपश्चरण हैं उनमें अनुरक्त रहे। इस विधिसे ज्ञानकी परम उपादेयता उत्कृष्टता प्रसिद्ध होती है।

ज्ञान व ध्यानकी प्रधानता—प्रश्न—मुनिका मुख्य कर्तव्य ज्ञान है या ध्यान ? उत्तर—जब ज्ञानका अर्थ स्वाध्याय करें तब तो मुख्य कर्तव्य ध्यान है और जब ध्यानमें न रह सके तब ज्ञान अर्थात् स्वाध्याय कर्तव्य है। और जब ज्ञानका अर्थ यह करें कि ज्ञातामात्रकी स्थितिमें रहना तब ज्ञान मुख्य है और जब ऐसे ज्ञानमें न रह सके, निर्विकल्प स्थितिमें न रह सके तब ध्यानमें रहना कर्तव्य है। अध्यात्मपद्धतिमें ज्ञानकी अर्थात् मात्र ज्ञाता रहनेकी स्थितिकी परमोपादेयता कही है। जिन्होंने इस ज्ञानस्वरूपका अनुभव किया है वे ही जब ध्यान में आते हैं तब समीचीन ध्यान बनता है और व्रत पालते हैं तब समीचीन व्रत होता है। जो परमार्थभूत आत्माके स्वभाव में स्थित नहीं होता, जिसने आत्मस्वभावका परिचय भी नहीं किया वह कभी व्रत अथवा तप करता है तो उसे सर्वज्ञदेवने बालतप और बालव्रत कहा है।

शान्तिका अन्तःप्रयत्न—आत्माका उद्धार इसीमें है कि

यह शान्त रहे, कषायोंका क्षोभ इस आत्मामें न आ सके। ऐसी बात उत्पन्न करनेके लिए जितना अपने एकत्व स्वभावके निकट आना होगा उतना ही यह शान्तिमें अपना कदम बढ़ा सकेगा। परपदार्थोंका आश्रय, उनकी दृष्टि, उनका आलम्बन, चूंकि वे पर हैं, अतएव उपयोग उनमें स्थिर तो हो ही नहीं सकता और साथ ही एक भिन्न तत्त्वपर अपनी इच्छा, दृष्टि, आलम्बन करनेपर चूंकि विषय और विषयोंमें समता न रही, इसलिए वहाँ आकुलताओंका उद्भव होता है। तो आखिर यह निर्णय करिये कि ऐसा प्रयत्न होना चाहिए अपना, जिससे कि परमार्थभूत आत्मस्वभावमें स्थित हो सकें। जितने भी ज्ञान किए जाते हैं उन सबका प्रयोजन आत्महितैषीका यह है कि हम अपने ज्ञानस्वभावमें स्थित रह सके, उसका पथ पायें। वह परमार्थभूत आत्मस्वभाव कैसा है, क्या है, इसका चिन्तन इन प्रयोगोंके माध्यमसे किया जाता है। प्रथम तो यह यत्न करें इस अवस्थामें कि किसी भी परपदार्थमें हमारा उपयोग न फंसे। जो भी परविषयक विचार आये, घरका, पुत्रका, परिवारका जो कुछ भी उपयोगमें परतत्त्वकी बात आये तो उसको इस प्रकार जानकर कि इससे मेरा पूरा तो नहीं पड़ता है और इसके आश्रयमें रहनेपर तो हमें आकुलता ही होगी। आखिर समस्त समागमोंका वियोग होगा। उनमें कुछ भी सार नहीं है, ऐसा जानकर उन्हें चित्तसे हटायें और अपने

आपमें मैं ज्ञानमात्र हूं, ऐसा अनुभव करें।

केवल ज्ञानस्वरूप निरखनेका अनुरोध——भैया ! प्रयत्न करें इस प्रकार निरखनेका कि मैं केवल ज्ञानज्योति मात्र हूं। ज्ञानका विषय ज्ञानस्वरूप रह जाय ऐसी अपनी कोशिश करें। जैसे हम अनेक पदार्थोंको ज्ञानमें लिया करते हैं कि यह जाना, जो सामने नजर आया वह जाना। सो जैसा हम जाननेका काम बाहरमें किया करते हैं बजाय इसके हम इस बात पर अपना संकल्प कर लें कि मुझे यह निर्णय करना है कि ज्ञान का वास्तविक स्वरूप क्या है, ज्ञान क्या है ? यद्यपि वह शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं हो सकता है, लेकिन फिर भी जो कुछ भी समझा है ज्ञानके बारेमें केवल जाननमात्र, प्रतिभास मात्र उसे ज्ञानका स्वरूप जाने। यदि उसके साथ कुछ रागकी बात है, द्वेषकी बात है, विकल्पोंकी बात है तो उस परभावको प्रतिभास मात्र निज तत्त्वसे हटा करके यह नहीं है प्रतिभासके स्वरूपमें, यह नहीं है जाननके स्वरूपमें, तब केवल जाननका जो स्वरूप है उसे जहां तक हो दृष्टिमें लें। अहा, ऐसा करते हुएमें यह उपयोग ऐसा उसको विषय करने वाला हो जाता है कि इसे ज्ञानस्वरूपकी बात जाननेमें आती है और उस स्थितिमें जो इसे अद्भुत आनन्द प्राप्त होता है उस आनन्दका थोड़ा बहुत जितना अनुभव होता है उस अनुभवके प्रसाद पर फिर यह निर्णय दृढ़तासे आता है कि ये सब सम्पर्ककी बा

असार हैं, इनसे कुछ मेरा हित नहीं है। मेरा हित तो मेरेमें निर्विकल्प ज्ञानस्वभावके निकट बसे रहनेमें है, उसकी ही चर्चा हो, उसकी ही इच्छा करें, उसमें ही लीन हों जिस प्रकारसे अविद्यामय स्थितिको मैं प्राप्त होऊँ वही मेरा उत्थान का उपाय है।

ज्ञानमात्रानुभवनका वैभव—ज्ञानमात्र हूं, ऐसी प्रतीति होना एक बहुत ऊँचा वैभव है। जैसे अपने आपके बारेमें नाम को लोग लपेट रहे हैं, मैं अमुक हूं, यों अपने नामकी प्रतीति मनुष्यको निरन्तर बनी रहती है। कुछ भी काम कर रहे हों वहाँ भी यद्यपि नामके बारेमें अपना ख्याल नहीं रख रहे हैं, रोजगारमें बसे हैं, किसी काममें बहुत तेजीसे लगे हैं, वहाँ ही उपयोग चल रहा है, उस समय कहीं कामका ख्याल नहीं रख रहे. लेकिन नामकी प्रतीति निरन्तर बनी हुई है, मैं अमुक हूं, और जब कभी कोई बुलाये, कुछ बात हो जाय तो तुरन्त उसे ख्यालमें लाते हैं और उसके अनुरूप अपना व्यवहार करने लगते है। तो जैसे नामकी प्रतीति लोगोंकी बनी रहती है, इसी प्रकार कषाय इसके यह प्रतीति बन जाय कि मैं ज्ञानमात्र हूं. मेरा यह आकार-प्रकार नहीं, मेरी यह शक्ल-सूरत नहीं। लोग मुझे जान जायें ? इस शक्ल सूरतको ? अरे यह तो मिट जाने वाली देह है, इसे क्यों समझ लिया कि यह मैं हूं ? नामवरी कहाँ चाही जा रही ? वह जो आत्मतत्त्व है, ज्ञान-

मात्र है उसकी नामवरी ही क्या, उसे इस जगत्के ये लौकिक लोग समझते हैं क्या ? जिनमें हम नामवरी चाहते हैं क्या वे इस ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्वको जानते हैं। मैं तो यह ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्व हूं फिर इस विचारमें अब वह लगाव छूट गया जिस लगाव पर यह परसे सम्बंध बना रहा था, ऐसा संपर्क बना रहा था कि अपनी सुध भी भूल जाता था, अब वह संपर्क नहीं रहा। मैं ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व हूं। यह प्रतीति जिस किसी भी प्रकारसे हो सके वह उद्यम बने तो हमें समझना चाहिए कि हमारा जन्म सफल है। अभी तक हम भूल किए बैठे थे जिसके कारण अभी तक संसारमें रुलते आये, नाना जन्ममरण करते आये, उसकी पूर्ति लो अब हुई। अब मैंने यथार्थ ज्ञान पाया।

विकार विडम्बनाओंसे निवृत्त होनेकी उत्सुकता—हितैषी का ऐसा अन्तःयत्न होता है जिससे ज्ञानमात्रका अनुभव बने। इसके विरुद्ध तो कुछ भी विकल्प उठते हैं, कषायकी तरंग जगती है, रागद्वेषकी प्राप्ति होती है उनपर एक पछतावा होना चाहिए। हे प्रभो ! यह कलंक मेरेमें लगा है, मेरी कलंक से मुक्ति हो। यह विकार तो विडम्बना है, मेरी बरबादीका हेतु है। इतना ही नहीं, विकार स्वयं बरबादीस्वरूप है। इसमें विश्वास नहीं होना चाहिये कि जो रागादिक भाव उत्पन्न होते हैं वे मेरे हितकारी हैं। पर निमित्त पाकर ये अपनेमें प्रकट

हो गए हैं, इनका क्या शरण गहना, इनमें क्या लीन होना इनको क्या तरसना है, यह तो एक विडम्बना है, पर उसे समझें तो सही कि जितने भी विकार भाव है वह एक विडम्बना है। मैं तो एक ज्ञानस्वभाव मात्र हूं। इस प्रकार ज्ञानमात्र अपने आपके स्वरूपकी प्रतीति रहे तो इससे बढ़कर और हमारा पौरुष क्या होगा मोहमें अपने स्वरूपकी प्रतीति नहीं हो पाती, वहाँ नामकी पकड़ बनी रहती है जिसके आधार पर क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक कषायें बढ़ती हैं। नाना प्रकारके ईर्ष्या, मोह आदिक समस्त विडम्बनायें एक इस बातपर होती हैं जो यह प्रतीति लिए हुए हैं कि मैं अमुक नाम वाला हूं, अमुक पोजीशनका हूं, अमुक ढंगका हूं, कितने लोग सहायक हैं, ऐसी अपनेमें नामकी प्रतीति रखना और इसका फैलाव बनाना ये सब हमारे पतनके लक्षण हैं।

ज्ञानावगाहनकी दिशा—हम अन्य सबको भूलकर किसी भी क्षण ऐसा ख्याल रख लें कि मैं तो नामरहित एक ज्ञान-मात्र हूँ। ऐसे ज्ञानमात्र ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्वमें लगनेको जानकारी कहेंगे। ऐसी ज्ञानरूप करतूत हमारी बन सके तो वे क्षण धन्य हैं। यह बात कुछ भी कठिनाईको लिए हुए नहीं है। जैसे कि द्रव्य कमाना, और और प्रकारके झगड़े सुलझाना, लोगोंको अपनाना, लोगोंको अनुकूल करना, अन्य अन्य बातें

जैसे कठिन हैं, उनमें बहुत विकल्प करने होते हैं, किन्तु इ
कार्यमें यदि किसीका भाव बन जाय तो क्या करना है ? ज
हों वहीं हो रहकर केवल मुख मोड़ना है, और वह मोड़ भी
लम्बा नहीं है। जैसे यहाँ शरीरके मुखकी मोड़ उससे कुछ
बड़ी है, इस ओर निहारा, अब दूसरी ओर निहारना है तो
उसका रास्ता बड़ा है, लेकिन यहाँ तो कुछ भी उस रास्तेरे
लम्बाई नहीं है कि मोड़में ज्यादा श्रम करना पड़े। उपयोग
है, अपने आपमें रहता हुआ यह उपयोग जानन कलासे इ
प्रकार इस ओर मुख कर रहा है, और वही ज्ञान वहाँसे विमुख
होकर अपने आपमें अपनेको निरखना चाहे, जानना चाहे, अनु
भवना चाहे, यह बात सुगम है, किन्तु इसकी धुन अत्यन्त द
होनी चाहिए।

आत्मनैकट्यका आदर—हम अपने आपके निकट
यही मात्र एक सार है और वह अपने आप है क्या ?
ज्ञानभाव, ज्ञानस्वरूप, प्रतिभासमात्र, ऐसी स्थिति, उस
भावके निकट हम रहें ऐसी धुनि अगर बड़ी विशेषतासे
जाय तो हम उसके निकट रह सकनेमें समर्थ हैं। उसमे
रुकावट नहीं। जैसे किसी बालकको घरमें बनने वाली वि
अच्छी चीजका स्वाद आया तो उसकी धुनिमें वह तो गुत
कर उसको ही ग्रहण करता रहता है। जिसे आत्मीय वि
आनन्दका स्वाद आया उसे बाहरमें दिखावट सजावटसे

प्रयोजन ? अपनेमें ही रहकर गुप्त ही गुप्त अपने अ पमें निज ज्ञानस्वरूपको निहारना है । उसकी गैल मिले तो यह क्षण मात्रमें उस अंतस्तत्त्व तक पहुंच जाता है । ऐसे ज्ञानका आदर बने तो यह हम आप सबके लिए बहुत ही अच्छी बात होगी, और तभी हम कह सकेंगे कि हमारा जन्म सफल है ।

केवल होनेके लिये अभीसे केवलके स्वरूपके परिचयकी आवश्यकता--भैया, आखिर हमें जीवनमें क्या बनना है ? बनना क्या है केवल रहना है । अभी तो कितने ही विकल्प लग रहे हैं, यह तो एक विडम्बना है । हमें इससे अलग होना है अर्थात् केवल रहना है, तो हमें उस केवलका स्वरूप भी तो जानना होगा और उस केवलका स्वरूप जानकर उस केवलके निकट हमें अपनेको बसाना होगा । उस ज्ञानमें हमें पहिले रहना ही होगा तब हम उस कैवल्यको प्राप्त कर सकते हैं । यह एक कैवल्य स्वरूपका जो ज्ञान है, वह ज्ञान ही परमार्थसे हमारा शरण है । जितना भी ग्रन्थोंमें वर्णन है वह सब वर्णन इस प्रकारका विज्ञान उत्पन्न करके फिर इसके लिए प्रेरणा देते है कि तुम अपने उस सहज ज्ञानस्वरूपके निकट पहुंचो, इसीके लिए हमारी ये सब विद्यायें हैं । तो हमें उस अपने स्वरूपमें पहुंचनेका अधिकाधिक यत्न करना है और उसके लिए ज्ञानार्जन, सत्संग और अपनी कषायोंपर विजय प्राप्त करनेका प्रयत्न करना है, उसकी ही धुन बनाये रहना है । मैं

ज्ञानमात्र हूं। यही अंतस्तत्त्व है, यही हमारा एक सहज है, सहज क्रिया है जिससे हम अपने आपमें तृप्त हो सन्तुष्ट हो सकेंगे, आनन्दमग्न हो सकेंगे।

ज्ञानीके परके कर्तव्यका अनाशय—यह आत्मा आपको अपनी ही परिणतियों द्वारा नाना वासनाओंमें जाया करता है और यह स्वयं ही इस जन्म मरण आ समस्त अवस्थाओंको भोगता है। हमारे भविष्यका जो उत्तरदायित्व है वह हमें अपने आप पर देखना होगा। अन्यकी आशा पर अपना कुछ भविष्य सोचें तो उसमें धोखा भी हो सकता है। जब हम परमेष्ठीकी, गुरुकी करते हैं उस समय भी परमार्थ आत्मगुणोंका अवलम्बन हैं और उस आलम्बन लेनेकी सामर्थ्य प्रकट हो उसके यह एक महत्त्वपूर्ण साधन है, हम व्यवहारमें भी जब कि कुछ राग बढ़ाते हैं अथवा विरोध बढ़ाते हैं तो वहाँ भी अपने आपमें ही कुछ कर रहे हैं। जो राग परिणमन जा रहा हो बस वहाँ तक ही हमारी करतूत है, दूसरेमें कुछ नहीं किया करते हैं, पर रागपरिणतिका ऐसा ही है कि उसमें कोई परद्रव्य विषय होता है जिसका लक्ष्य जिसे उपयोगमें लेकर रागपरिणति बनती है, इसी विरोधकी बात है। हम किसीसे विरोध नहीं करते,

विरोधका जो अपने आपमें औपाधिक परिणाम बनता है उस विरोध परिणमनसे अपने आपमें विरोधन की अवस्था बनती है। तो हम अपने आपकी बातों पर कितना उत्तरदायित्व समझें इस सम्बंधमें अवश्य निर्णय करना चाहिए।

कल्याणार्थ निर्दोष श्रद्धाकी अनिवार्यता—जहाँ तक हो, यत्न यही हो कि वस्तुस्वरूपके विरुद्ध हमारा श्रद्धान न हो और कषायोंका उपशम हो। यह चर्या हमारे लिए लाभकर होगी, इसके विपरीत हम जहाँ परसम्पर्क बढ़ायें, परके सम्पर्क से ही अपना सर्वस्व हित मानें वहाँ ही हमारी कर्तृत्व और भोक्तृत्वकी बुद्धि रहे तो यह हमारे लिए हानिकी बात है। इसी प्रकार जब हम क्रोधादिक विकारोंको अपनेसे विपरीत स्वभाव वाला न समझें और अपनी उस करतूत पर गर्व रखें, मैं ठीक कर रहा हूं, मैंने ठीक किया, मैं ऐसा ही करूंगा, इस प्रकार विकारभावोंको अपनाकर उन विकारोंमें प्रसन्नता रख-कर जो अपना जीवन गुजारना है वह भी धोखेका जीवन है। कहा गया है ना—कीजे शक्ति प्रमान शक्ति बिना सरखा धरे। यही सब प्रसंगोंमें घटाइये। जो अच्छे अच्छे प्रसंग हैं उनका लाभ लेनेके लिये हम त्याग करें शक्ति प्रमाण, हम जो कुछ भी अपनी प्रवृत्ति, निवृत्ति बनायें, तो जो बनती है शक्तिप्रमाण ठीक है, पर श्रद्धा तो हमें उसकी उत्तम रखनी ही चाहिए।

केवल होनेके लिये कैवल्यस्वरूपकी श्रद्धाकी प्राथमिकता

भैया ! हमें एक केवल बनना है, इसीका नाम तो निर्वाण है इस ही का नाम तो संकटोंसे छुटकारा है। हम मात्र रह जा जो एक जानन देखनहार दृष्टि है वह केवल रह जाय, केव जाननहार रह जाय, उसमें अन्य तरंगें न उठें, रागादिककी कल्पनायें न जगें, इस ही का नाम तो शान्ति प्राप्त करन होगा। केवल हम जानना चाहें तो अभीसे उस कैवल्यस्वरू की दृष्टि ही तो बनानी है। मैं वह केवल क्या हूं, जिसे केव बनना है वह स्वरूप क्या है ? किसी भी मिले हुए समूहोंमें किसी एकको अलग करना है तो यह तो समझना ही पड़ है कि जिस एकको हमने अलग करके अपनाना है, रखना वह एक क्या है, और जब वह एक समझमें आ जाता है त सुगम ही समझमें आता है कि वे अनेक क्या हैं ? जिनसे एकको निराला बनाना है। चावल जब बीनते हैं तो बीन वालेकी दृष्टिमें तो है ना यह कि यह चावल है और शेष कू करकट है तभी तो वह चावल अल कर लेता है और कू करकट अलग कर देता है। हमें अपने आपको केवल जता है तो हम उस केवलके स्वरूपको तो जानें, वह मैं केवल क हूं ? ये जितने वैभव हैं, जड़ सम्पदायें हैं, ये मैं नहीं हूं इन सम्पर्क मुझमें नहीं है, इनसे मैं निराला हूं। जो परिजन मित्रजन हैं वे सब मैं नहीं हूँ, उनसे मैं निराला हूँ। जो

है, जीवके साथ कर्मोंका बन्धन है, यद्यपि कर्म दृष्टिगत नहीं होते, किन्तु वे सब अनुमान प्रमाणसे भी जाने जाते और आगमसे भी जाने जाते, उन कर्मोंसे मेरा स्वरूप निराला है। मैं एक चिदानन्द स्वरूप हूं। ये सब रूप, रस, गंध, स्पर्शमय हैं, जड़ हैं, और उन कर्मोंके उदयका निमित्त मात्र पाकर जो आत्मामें रागादिक विकार अवस्थायें होती हैं, स्वरूपतः सोचिये यद्यपि रागादिक परिणमन मेरे परिणमन हैं, पर मेरे स्वभाव नहीं हैं, ये औपाधिक हैं, विनश्वर हैं, मैं इनसे भी निराला हूं।

सर्वविशुद्ध ज्ञानके आश्रयसे सिद्धि—जब अपने उस चैतन्यस्वरूप पर दृष्टि देकर उसे जाना जाय कि यह मैं हूं, यह जीव है, यह आत्मा है, तब वे सब बातें स्पष्ट विदित होंगी जो कि श्री पूज्य कुन्दकुन्दाचार्यने समयसारमें जीवाजीवाधिकार में बतायी हैं। मैं कर्म नहीं, मैं देह नहीं, मैं अध्यवसान नहीं, और तो क्या संयम लब्धिस्थान, अध्यात्मस्थान भी मैं नहीं। इन सबसे अपने आपको वहाँ निराला बताया है, तो इस प्रकार जब हम उस केवलको जान सकेंगे, जो आखिर अंतमें केवल रहेगा तो हम केवल होनेके मार्गमें चल भी सकते हैं। अपनेको एक शान्तिलाभ चाहिए, शान्तिलाभ मिलेगा कब ? जब जो शान्तस्वरूप आत्मतत्त्व है उसका यथार्थ परिचय हो, अनुभव हो जिसके प्रसादसे समस्त तत्त्वोंसे परम उपेक्षा हो,

ऐसे उस ज्ञानस्वरूपको निहारकर परिचय करना, प्रत्यय रखना अनुभवना कि मैं ज्ञानमात्र हूं। इस प्रकारका जो जानन है उसे कहते हैं सर्व विशुद्ध ज्ञान। इस ज्ञानकी महिमा अचिन्त्य है। इस ज्ञानका आलम्बन पाकर ही साधुजन निर्वाणको प्राप्त हुए हैं।

अज्ञानकी शान—अहो भैया! सब कुछ जाना जीवोंने यत्र तत्र भ्रमण कर बहुत कुछ परखा, सब भवोंका स्वाद भी लिया होगा। किस भवमें रहकर कैसी बीतती है वह सब भोगा होगा, किन्तु एक अपने आत्माके एकत्व स्वरूपका अनुभव परिचय पाये, यह बहुत दुर्लभ बात है। जो खुद है, खुद की चीज है, सुगम है, स्वयं स्वरूप है वह दुर्लभ बन गई और जो स्वयंसे पृथक् है उसके लिए यह जीव मुंह उठाये फिर रहा है, उन परचीजोंको अपना रहा है, उनमें रमकर अपनी वीरता समझ रहा है और इसीमें अपनी शान मान रहा है। जैसे शेखचिल्लीपनेकी कहानी कहा करते हैं लोग—केवल कल्पनासे अपनेको प्रसन्न कर रहे हैं, आता जाता कुछ नहीं, इसी प्रकार यहांपर भी आता जाता कुछ नहीं है। आत्मस्वरूपमें कैसे पर की कुछ बात आ जाय? द्रव्य गुण पर्याय कुछ भी मेरे आत्मा में आ जाय और मेरे आत्माका कुछ भी तत्त्व किसी परमें पहुंच जाय और मैं अपने स्वरूपसे शून्य हो जाऊं ऐसी बात तो होती नहीं है। लेकिन कल्पनाने इन सब बातोंका चित्र

स्कार कर दिया, सो आत्मस्वभावका तिरोभाव हो गया।

अज्ञानीकी मायामौज—मोह नींदमें अचेत होकर हम अटपट कल्पनायें बनाते, ऐसा होगा, मैं यों बनूंगा। जैसे घसियारा घासका बड़ा गट्ठा लेकर अपने साथियोंके साथ चला और बोझसे हैरान होकर बोझ उतारकर किसी वृक्षके नीचे सो गया। सोते हुयेमें उसे एक ऐसा स्वप्न आया कि मैं राजा हो गया हूँ, बहुतसे लोग मुझे नमस्कार कर रहे हैं, सेवामें आ रहे हैं, मैं उनपर हुक्म चला रहा हूं, यों वह घसियारा उस स्वप्नमें बड़ा मौज मान रहा है। अब सोते-सोते देर हो गई तो किसी साथके घसियारेने उसे जगा दिया कि चलो अब चार बज गए, फिर घर कब लौटोगे? तो जगने पर उस जगाने वाले घसियारेसे वह जगने वाला घसियारा झगड़ने लगा कि अरे तुमने मेरा राज्य छीन लिया, मुझे दीन बना दिया। साथी लोग सोचते हैं कि यह क्या बक रहा है? बस यही हालत है संसारी जीवोंकी। यहाँ सार क्या है? काहेका राग द्वेष? जब सब जीवोंका स्वरूप अपने ही समान हैं और सब अत्यंत पृथक् हैं तब फिर उनमें क्या राग और क्या विरोध? यह मेरा है यह गैर है इसकी कल्पना करना यह किसके लिए हितकर है? यह स्वयंके लिए ही हितकर है।

सर्वविशुद्ध ज्ञानस्वरूपके परिचयमें परमार्थलाभ—जब तक हम ज्ञानके शुद्ध स्वरूपका परिचय न पायें, शान्तिका

उपाय भी नहीं जान सकते। शुद्धके मायने मात्र ज्ञान। ज्ञान जो कार्य करता है, केवल उसका जो परिणमन है, उसकी जो स्थिति है इस हालतमें भी जब तक कि एक साथ हमारेमें ज्ञान भी चल रहा, राग भी चल रहा है, ऐसी स्थितिमें भी उस रागके स्वरूपको उपयोगमें न लेकर, राग कहा किसे है, उसको एक बार ओझल रखकर ज्ञानका स्वरूप क्या है, उस ज्ञानके स्वरूपपर दृष्टि करें तो समझ लीजिये कि उस मिश्रण में भी निराला हमने उस विशुद्ध स्वरूपको देखा। उस ज्ञान-स्वरूपका परिचय बने तो फिर आत्मामें कुछ शान्ति प्राप्त होगी, उपशमभाव आयगा। ऐसी अवस्था, कैवल्य अवस्था हमारी प्राप्त हो इसके लिए हमें अपने ज्ञानके विशुद्ध स्वरूप को समझना ही होगा और उसकी रुचि जगानी होगी, वैसा ही हमें बने रहनेकी धुनि बनानी होगी। वहाँ हम रहें, और जगतसे क्या प्रयोजन है ? किसीने कुछ भला कह दिया, किसी ने कुछ प्रशंसाका शब्द कह दिया, कहेगा भी कौन ? जो अपनी कषायके अनुकूल कषाय रख रहा हो, तो उस भली लगने वाली बातके सुननेसे क्या लाभ उठा लूंगा ? आत्महित करना है तो अपने आत्माके सहज स्वरूपका परिचय करना होगा और उसमें ही रमण करनेकी धुनि बनानी होगी। यह बात बन सके तो समझिये कि हमने बड़ा पौरुष प्राप्त किया है, अब उसके कारण हमारा सब कुछ मार्ग आगे सुगम बन

सकता है।

ज्ञान और विज्ञानका विश्लेषण—भैया! सर्व विशुद्ध ज्ञानतत्त्वका ज्ञान करो। यह ज्ञानतत्त्व स्वयंमें सदासे सदा तक अनवरत रहा करता है। जो इसका परिचय करे वहाँ भी यह सहज ज्ञानस्वरूप है, जो इसका ख्याल तक भी न करे वहाँ भी यह सहज ज्ञानस्वरूप है। जिसने इस ज्ञानस्वरूपका परिचय नहीं किया उसको यह अनुपलब्ध है। जो ज्ञान इस निज सहज स्वरूपका ज्ञान करे वह तो है ज्ञान, किन्तु जो ज्ञान इस सहज स्वरूपको छोड़कर अन्य पदार्थोंका ज्ञान किया करे वह विज्ञान है। जो विषय साधनोंके हेतु विज्ञान किया जाता है वह तो है लौकिक विज्ञान और जो विषय साधनेके अर्थ तो नहीं, किन्तु जो स्वरूपनिर्णय व विवेचनके लिये गुण पर्यायों आदिका नाना ज्ञान किया जाता है वह है अलौकिक विज्ञान। लौकिक विज्ञानोंमें भी जो विज्ञान इन्द्रिय और मन के विषयोंके सेवनमें आसक्त होकर प्रवर्तता है वह तो है पाशविक लौकिक विज्ञान और जो बड़े दिमागोंसे जिस विज्ञान से बड़े बड़े आविष्कार किये जाते हैं वे हैं वैज्ञानिकीय लौकिक विज्ञान।

मुमुक्षुका कर्तव्य—संसारके संकटोंसे सदाके लिये छुटकारा हो, इस आशय वाले मनुष्योंका कर्तव्य है कि वे पाशविक लौकिक विज्ञानको तो हटा दें और यदि वे इतनी यो-

म्यता रखते हैं कि वैज्ञानिकोंमें लौकिक विज्ञानमें उपयोगत चला सकते हैं तो वहाँ चलकर अपनी योग्यता बढ़ा लें, कि उसका परिष्कृत अन्तिम रूप यह हो कि पदार्थके वास्तवि स्वरूपका विश्लेषण करें, विविध गुण पर्यायोंका विवि ... प्राप्त करें अर्थात् अलौकिक विज्ञान प्राप करें। अलौकिक विज्ञानी वस्तुस्वरूपके यथार्थ निर्णय करनेप भेदविज्ञान प्रकट कर लेता है। यह आत्मतत्त्व है और सब अनात्मतत्त्व हैं। अब ऐसा भेदविज्ञानी पुरुष अनात्मतत्त्व को छोड़कर आत्मतत्त्वमें उपयोग लगाता है, जमाता है। ब ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्वमें जो उपयोगका बसना है वही ज्ञा है ... ज्ञानकी सकल संयमपूर्वक उपासना की जाय, इस ही में आत्माका कल्याण है।

—: समाप्त :—

पुस्तकें मंगाने के पते :—

खेमचन्द जैन

१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ।

सुमेरचन्द जैन

१५, प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर